डॉ. मंजूर सैय्यद, प्रा.खालकर देविदास जगन्नाथ (76-78)

सुधा अरोड़ा के साहित्य के महानगर बोध

डॉ. मंजूर सैय्यद[१] , प्रा.खालकर देविदास जगन्नाथ[२]

एम,ए,फिल

प्रस्तावना :–

सुधा आरोड जी आधुनिक काल की सशक्त काहनीकार है. जिनकी सोच में समाज का दर्द एंव मानवीय संभावना नीहित है. उनकी कहानी साहित्य में विभीषिकाएँ और महानगरीय यथार्थ अत्यंत गहराई के साथ चित्रित है. आप साहितीक समाज में सजक प्रहारी मानि जाती है. महानगरीय समाज के लोग विभिन्न सुख सुविधायों को अपनाते है पर स्वधीनता के उनहत्तर वर्षो बाद भी महानगरीय समाज कों आपने अत्यंत सुक्ष रूपसे अपने साहित्य में समाहित किया है.

और आनेवाले भविर्षे के समय में आपने लिखे हुए महानगरीय सभी साहीत्य पर विश्लेषनात्मक विचार विमर्श होना

आव्हश है. जैसे हमारे आलेख की कहानी वर्तमान महानगरी में नारी के जीवन में बहु आया मी त्रासदी का सामना करणा पडता है.

अगर सुक्ष्मतासे देखा जायतो महानगरी में सभी भोतीक सुविधा तो होती है पर सब इस **मानवीय महानगरी में समय की हर कीसी के पास कमी होती है. और इस वर्तमान महानगरी में सुरक्षा का भी बहुत सारा आभाव दिखता है.**

सुधा आरोड जी की प्रस्तुत काहानि में **महानगर की मैथिली का चीत्रण किया है**.इस कहानी में मैथिली को केंद्र बुन्दु मानकर इस महानगर की त्रासदी को व्यर्थीत किया है.

चित्रा आधुनिक युग की स्त्री है. वह चार साल की कन्या मैथिली की मॉ है तो वह दुसरी और वह दिवाकर की पत्नी है महानगर में जीवन आपन करने के लिए सबसे मेहत्वपूर्ण होता है और आर्थिक समस्याओं के कारण शिक्षिका की नौकरी करनेवाली चित्रा रोज की भागदौड भरी जिंदगी से दिवाकर के लिए समय नहीं निकाल पाती वही दूसरी और चार साल की बेटी मैथिली भी चाहती है कि छुट्टी के दिन माता–पिता सिर्फ उसी के साथ रहों पत्नी शिक्षिका और मॉ इन तिनों भूमिकाओं को निभाते–निभाते चित्रा के सामने अनेक भावनिक समस्याएँ जन्म लेती है जो आजकी सच्ची वास्तवता में महानगरीय जीवन की त्रासदी है.

और यह सभी रिशतों को निभाते–निभाते चित्रा अपनी चार साल की मैथिली को नही समझ पाती वह दिनभर उसको पालना घरमें सभालने के लिए

ताराबाई के पास सभालने के लिए छोड देते है. लेकिन मैथू वहा नही जाना चाहती और वह भावनिक होकर सोचने लगती है मेरी ''मम्मी''ना मुझे समय दे सक्ती है ना मेरे पाप्पा को फिर अनयास ही ऐसा सवाल उठता है की अगर महानगरीय भागदोड भरी जीवन में इतना सभकुच सेहना पडता है की माता–पिता यहॉ तक की अपने तक अपने तक अपनो के लिए समय नही निकाल पाते तो वह आनेवाली नई पिढी केसे होगी केसे संस्कार होगे उनपर अपने माता–पिता को क्या संभालेगे

और अचानक ही मन में ठेर सारी आशंकाएँ जन्म लेती है. इसी का मल कारण है की महानगरो में में आज कल बोहोतसारे वृध्द आश्रम क्यू खडे हो रहे है. आनेवाली नए जमाने की नई पिढी अपने माता–पिता को सभालने में 'अ' समर्थता मानते है. जिनोव्हने इने–इनके बचपन में अच्छेसे परवारिश की लालन–पालन किया उसकी बदालत उने–उसकी बढा पेकी लाठी होने के बदले वह वृध्दाश्रम भेज देते है.

यह सब सोचते सोचते आजके इन महानगरो की और देखने का समय का कुछ नजारा ही बदल गया है.

सब के पास समय के बदलते नियमों के साथ रिशतों में भी दरारा आने लगी है.

चारसाल की कोमल फुल सी बच्ची मैथिली भी यह सोचती है. की छुट्टी के दिन भी उसके माता–पिता के प्यार के आभाव में अपने मायुसीया अलग अलग तरिके से व्यक्त करती है. वह पालन घर की ताराबाई के यहा जाना पसंत नहीकरती बलकी वह शर्मा आंटी के यहा जाना पसंत करती है.

यहा पर कहीतों हमें सिख मिलती है की मैथिली के रूप में पल रहे आजके महानगरीय सभी बच्चों में कही तो संस्कार नाम मात्र नाम ही रह जा रहा है. बलकी सचे संस्कार का आभाव निरर्मीत हो जाता है. तो आनेवाले इस नई पिढी को हम किस चौकट में बिठाने योग्य माने हमें यह भी स्वकार कर लेना होगा की कहीतो हम भी इस आनेवाले

समय अभावि महानगरीय जीवन को जाकर कहा कीस कट खडे में रहाडा करेंगे

चित्राजो महानगरीय निवासी है अपनि आर्थिक स्थिती को सुधारने के लिए वह शिक्षीका की नोकरी करती है पर हय हमें और समय के सिने
की छलनि–छलनि करते हुए सबके सिर पर और इस वसुनधरा के सिरपर यू मनंडरा रहा है कि आनेवाले नवजात शुशुओं को भी सासे कही समय की सिख से ना लेनी पडै.

और जहासे यह अपने जीवन आपन की शिक्षा हासील करते है वही देने वालो की आजकी महानगरीय स्थिती कीस चैकट में खडी है.

कही तो समय उस आनेवाले समय का संकेत दे रहा है की जो महानगरो में जन्म लेने वाले नवजात शूशू जन्म उपरात ग्याण हासील करते है.

कही उनग्यान देनेवालो का ही ना अस्थीतत्व मिट जाय अध्यापक.

चित्रा महानगरीय स्त्री महानगरों में तो निवास करती है पर आज भी हमारी पुरूष प्रधान संस्कृती है. वह महानगरो में अपना जीवन जीती तो है. पर उसको स्वतंत्रत्ता नाम की चीक कहा होती है.

फिरअपने खुद के जीवन बोहोत ऐहेम फेसले भी क्यू ना हो बच्चपन से लेकर पराई हो जाने तक वह बधी होती है. समय के साथ रोक दीजाती है.

दफतरों फाइलों में सरकारी काम काजो में केहेने को तो सिर्फ ५० ÷ प्रतीशत का आरक्षण है. पर सच्चाई समय के साथ कुछ और ही दोह राती है. यहा तक की कभी–कभी अपने भी बेगाने लगाने लगते है.

निष्कर्ष:–कथाकार सुधा आरोडा जी ने अपनी कहानि महानगर की मैथिली में जीवन की सुक्ष संवेदनाओं को समझा ते हुए कही सकते है की वर्तमान महानगरीय जीवन अपनी रूधय स्पर्स्श मई सच सच्चाई के साथ समाज की आखों के सामने उभर आती है. और एक असंतुलीत और वास्त दृष्टी हमारे सामने आज के महानगरीय जीवन की पोल खोल देती है जिसमें आर्थिक ताकी सच्चाई के साथ–साथ गहरे रिश्तोकी दरार की गुमशुदा खामो शोया भी अदा करती हो. पुरूषप्रधान हमारी भारतीय संस्कृती होने के कारण स्वतंत्र पर रोक लगती है. आज स्थितियॉ बदलने के नाम पर आर्थिक शोषन किया जाता है और राजनैतीक शिक्को के नाम पर मानसीक शोषन कीया जाता है.

नि:सदेह उपयुर्त कहानि में सुधा आरोडा जी ने जिने सच्ची जीवन स्थितियों और समाज विचारीत नाम पागा का चित्रण करते हुए जिस वास्तवत का परिचय दिया है वह हमारी समाजभिमुख जानका रिमें कुछ बुनियादी इजाफत करता है.

संदर्भ ग्रंथसूची–

सुधा आरोडा – महानगर की मैथिली